गुजराती में समाज-विज्ञान

किरण देसाई

गुजराती में लिखे जाने वाले समाज-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं की चर्चा करने या उस पर ग़ौर करने से पहले हमें गुजरात में समाज-विज्ञान की सर्वसाधारण स्थिति का सर्वग्राही मुआयना करना पड़ेगा। इसके सभी आयामों पर ध्यान देने के बाद यह स्वीकार करने में झिझक नहीं होनी चाहिए कि गुजरात में समाज-विज्ञान काफ़ी नाज़ुक दौर से गुज़र रहा है। राज्य भर के विश्वविद्यालयों के अनुस्नातक भवनों में अपनी चाह से, यानी दिलचस्पी के विषय में, प्रवेश लेने वाले छात्रों का प्रतिशत लगातार कम होता जा रहा है। इस शोचनीय स्थिति के बारे में न तो शिक्षक समुदाय में कोई चिंता दिखायी देती है, और न ही गुजरात के सार्वजनिक क्षेत्र में इस पर कोई बहस नज़र आ रही है। अहमदाबाद और बड़ोदरा जैसे बड़े शहर इस प्रदेश में विद्याकीय (अकादमिक) केंद्र रहे हैं। यहाँ वैसे भी बौद्धिक और सांस्कृतिक चहल-पहल विशेष रूप से होती आयी है। यहाँ के विश्वविद्यालय और कॉलेजों को छोड़ कर गुजरात के बाक़ी के शहरों या नगरों या कस्बों में समाज-विज्ञान की स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही है (वैसे इन दो केंद्रों की स्थिति भी पहले की तुलना में सराहनीय नहीं कही जा सकती है)। गुजरात की आर्थिक राजधानी कहे जाने वाले सूरत शहर के एक भी कॉलेज में समाजशास्त्र या राज्यशास्त्र का स्नातक स्तर का विभाग नहीं है। यहाँ तक कि सूरत में

वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय के अनुस्नातक भवनों में राज्यशास्त्र और इतिहास के भवन नहीं हैं। यह एक खलने वाली ग़ैरहाज़िरी है (वैसे ग़ौर करने वाली बात यह भी है कि सूरत और गुजरात के प्रसिद्ध साहित्यकार नर्मद के नाम पर बने इस विश्वविद्यालय के अनुस्नातक भवनों में गुजराती भाषा का विभाग बड़ी जद्दोजहद के बाद हाल ही में खुल पाया है)। इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि जिस शहरी क्षेत्र का जनजीवन औद्योगिक, आर्थिक और वाणिज्यिक प्रवृत्तियों और व्यवहारों के इर्द-गिर्द बुना हुआ हो, वहाँ वाणिज्य और व्यापार प्रबंधन के विषयों में ज़्यादा रुचि होगी। इसी कारण सूरत में इन विषयों के स्वनिर्भर कॉलेजों की संख्या विशेष है। ऐतिहासिक नगर पाटण जिसका केंद्र है, उस उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी में अस्पताल प्रबंधन और होटल प्रबंधन के अनुस्नातक भवन तो हैं, पर इतिहास, राज्यशास्त्र और समाजशास्त्र के अनुस्नातक भवन नहीं हैं (विडम्बना की बात यह है कि इस युनिवर्सिटी की कुलपति महोदया खुद समाजशास्त्री हैं)।

समाज-विज्ञान में पीएच.डी. और एम.फ़िल. करने का मुख्य मक़सद ज़्यादातर कॉलेजों और अनुस्नातक भवनों में शिक्षक की नौकरी पाना होता है। सही माने में संशोधनलक्षी (अनुसंधानार्थ) या विद्याकीय उद्यम के लिए आवश्यक परिश्रम के तत्त्व तो अपवाद स्वरूप ही दिखायी देते हैं। इस वजह से राज्य के ज़्यादातर विश्वविद्यालयों में पीएच.डी. और एमफ़िल के शोध-निबंध यंत्रवत तैयार हो रहे हैं। उन्हें बड़ी आसानी से, बिना कोई ख़ास झंझट के उपाधि के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। हरेक शाखा में एक तरह से विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के बीच 'वाटकी व्यवहार' चल रहा है, यानी आप मेरे शिष्य का ख़याल रखिए, मैं आपके शिष्य को बहाल करूँगा। ज़्यादातर गुजराती में लिखे जा रहे इन शोध-निबंधों का भाषा-स्तर मामूली-सा (बहुत से मामलों में काफ़ी कमज़ोर)

गुजरात के मुख्यधारा के सार्वजनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह ही समाज-विज्ञान के क्षेत्र में भी भाषा के प्रति गहरी उदासीनता और बेपरवाही सीधे तौर पर प्रतिबिम्बित होती हुई दिखायी पड़ती है, ख़ास कर लिखित भाषा में। ऐसा मालूम होता है कि ज़्यादातर लेखन में शब्दों की अर्थ-छाया की सूक्ष्मता से परहेज़ किया जा रहा है।

होता है। न तो वह अच्छी गुजराती कही जा सकती है, और न ही समाज-विज्ञान के मापदंड से अच्छी भाषा। मुख्यत: गुजरात के मुख्यधारा के सार्वजनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह ही समाज-विज्ञान के क्षेत्र में भी भाषा के प्रति गहरी उदासीनता और बेपरवाही सीधे तौर पर प्रतिबिम्बित होती हुई दिखायी पड़ती है, ख़ास कर लिखित भाषा में। ऐसा मालूम होता है कि ज़्यादातर लेखन में शब्दों की अर्थ-छाया की सूक्ष्मता से परहेज़ किया जा रहा है। वैसे भाषा के नज़रिये से समाज-विज्ञान में यही स्थिति गुजराती भाषा के अन्य प्रकार के लेखन की भी है— चाहे पुस्तक हो या फिर लेख। यदि हम समाज-विज्ञान के विद्याकीय योगदान के अहम पहलू को समाविष्ट करें, उसका ज़िक्र करें तो स्थिति और भी गम्भीर प्रतीत होती है।

एक अन्य अहम मसला गुजराती में समाज-विज्ञान के लेखों के प्रकाशन से जुड़ा है। समाज-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में संशोधन आधारित और विचार संबंधित लेखों को प्रकट करने वाले विद्याकीय या अर्ध-विद्याकीय जर्नल गिने-चुने ही हैं। सेंटर फॉर सोशल स्टडीज़, सूरत का जर्नल *अर्थात्* पिछले तीस सालों से लगातार प्रकाशित हो रहा है। इस पत्रिका में गुजरात के विभिन्न कॉलेजों

और विश्वविद्यालयों के संशोधकों/शिक्षकों द्वारा भेजे गये लेखों में से सम्पादकीय विवेक–दृष्टि से उचित ठहरने वाले लेखों को स्थान देने के अलावा लेखकों को किसी ख़ास विषय पर लिखने के लिए निमंत्रित भी किया जाता है। इसके अलावा, अंग्रेज़ी या हिंदी में और अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित किये गये लेख अनूदित करके छापे जाते हैं। *अर्थात्* ने कुछ अहम विषयों पर विशेषांक भी निकाले हैं। इस उपक्रम के तहत अब तक अनामत आंदोलन, क़ौमी प्रश्न, हिंद स्वराज, साहित्य–समाज अनुबंध, स्त्री संबंधित मसलों, डायस्पोरा, भूकम्प जैसे विषयों पर विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। इस तरह के प्रकाशनों के लिए अतिथि सम्पादक निमंत्रित करने की रीति भी अपनायी जाती है।

अर्थात् के अलावा गुजरात में सुप्रसिद्ध भारतीय प्रबंधन संस्थान, अहमदाबाद (आईआईएमए) से *विकल्प* नाम का त्रैमासिक पिछले तीस से भी ज़्यादा वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। अर्थसंकलन ट्रस्ट नामक संस्था पिछले 85 वर्षों से *अर्थसंकलन सामयिक* निकाल रही है। वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत अपना अर्द्धवार्षिक जर्नल पिछले तीन सालों से प्रकाशित कर रही है। सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर का अर्थशास्त्र विभाग *अर्थविकास* नाम का जर्नल तक़रीबन 84 सालों से चला रहा है। आर्च ने, जो कि एक ख़ास विचारधारा आधारित स्वैच्छिक संस्था है, पिछले पाँच सालों से *खोज* नामक जर्नल शुरू किया है। चालीस से भी ज़्यादा वर्षों से *आर्थिक विकास सामयिक* प्रकट हो रहा है। गाँधी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ से, जो एक युनिवर्सिटी के समकक्ष संस्थान है, दो पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं : युनिवर्सिटी के आदिवासी अनुसंधान केंद्र का जर्नल *आदिवासी गुजरात* और स्वयं युनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित *विद्यापीठ*। आदिलोक नाम की संस्था ने *आदिलोक* जर्नल का प्रकाशन पिछले तीन–चार साल से आरम्भ किया है।

इनमें से कई पत्रिकाएँ अपने स्वरूप, लक्ष्य और विषयवस्तु जैसे पहलुओं के लिहाज़ से काफ़ी अलग पहचान रखती हैं। आईआईएमए की पत्रिका *विकल्प* और *अर्थविकास* (अर्थशास्त्र विभाग, वल्लभ विद्यानगर) अंग्रेज़ी में निकलती हैं। *विद्यापीठ* में गुजराती के साथ–साथ अंग्रेज़ी और हिंदी में लिखे गये लेखों को भी स्थान मिलता है। अन्य सभी जर्नल गुजराती के हैं। *अर्थात्* में समाज–विज्ञान के सभी अनुशासनों के लेखों को स्थान दिया जाता है। पत्रिका की सम्पादकीय नीति में पिछड़े तबक़े के पक्ष में समाज परिवर्तन का वैचारिक झुकाव मौजूद है। *अर्थात्* में अनुभवजन्य संशोधन आधारित लेखों के अलावा सैद्धांतिक पहलुओं से जुड़ा हुआ लेखन, वैचारिक बहस एवं दार्शनिक लेखों के साथ–साथ सम्प्रति सामयिक मुद्दों से संबंधित चर्चा भी होती है। एक प्रतिष्ठित प्रबंध संस्थान का जर्नल होने के नाते *विकल्प* में मुख्य रूप से प्रबंधन और अर्थशास्त्र के विषयों से जुड़े हुए लेख होते हैं। इसी तरह *अर्थविकास* में अर्थशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट है। *विद्यापीठ* वैसे तो सभी अनुशासनों को स्थान देती है, फिर भी इसमें गाँधी विचार की केंद्रीयता है। उसी तरह *आदिलोक* और *आदिवासी गुजरात* में ज़्यादातर लेख आदिवासी समाज से संबंधित होते हैं। अलबत्ता दोनों में एक पहलू को लेकर अंतर है। एक तो, *आदिवासी गुजरात* समाज–विज्ञान का ऐसा जर्नल है जिसमें मुख्य रूप से संशोधन आधारित लेख प्रकाशित होते हैं। दूसरी ओर, *आदिलोक* में आदिवासी समाज से जुड़े ऐसे लेखों को भी स्थान दिया जाता है, जो संशोधन या समाज–विज्ञान से जुड़े नहीं होते हैं। पर इन दोनों में सबसे अहम भेद विचारधारा से संबंधित है। *आदिलोक* एक राजकीय वैचारिक स्थिति की बुनियाद पर आदिवासी समाजों के प्रश्न एवं समस्याओं और आदिवासी अस्मिता जैसे मुद्दों पर बहस छेड़ता है। दूसरे शब्दों में *आदिवासी गुजरात* में राजकीय विचारधारा का तत्त्व बिल्कुल ही मौजूद नहीं है, जबकि *आदिलोक* एक विशेष राजकीय विचारधारा से समर्पित सामयिक है।

जैसा कि *अर्थसंकलन* के नाम से स्पष्ट है, इसमें मुख्य रूप से सांख्यकीय आधारित सामग्री का संकलन पाया जाता है। आर्च द्वारा प्रकाशित *खोज* में भी एक ख़ास वैचारिक झुकाव का तत्त्व साफ़

तौर से प्रतीत होता है। जयप्रकाश नारायण की विचारधारा से प्रभावित यह संगठन कार्ल पॉपर की खुले समाज की विभावना का दृढ़ समर्थक है और इसी वजह से मौजूदा परिस्थिति में राज्य के नियंत्रण से मुक्त बाज़ार के ख़याल का भी प्रखर हिमायती है। *खोज* में आदिवासी–दलित–स्त्री जैसे पिछड़े तबक़ों से जुड़ी समस्याओं, जनांदोलन, जंगल–पानी–ज़मीन से जुड़े अहम मसलों एवं दार्शनिक विषयों पर चर्चा की जाती है। संशोधन से ज़्यादा वैचारिक घटक की अहमियत इस जर्नल में पायी जाती है।

तीन और विचार–पत्रों का ज़िक्र करना यहाँ अति आवश्यक है। ये हैं : *निरीक्षक, भूमिपुत्र* और *नया मार्ग*। ये तीन पाखवारिक सामयिक साम्प्रत परिस्थिति के अहम मसलों पर बहस छेड़ते हैं। *भूमिपुत्र* विनोबाजी की सर्वोदयवादी विचारधारा से प्रभावित है। यह बात विचार–पत्र में समाविष्ट लेखों में स्पष्ट रूप से उभरती है। इसके बावजूद अन्य विचारधाराओं के प्रतिनिधि लेखों को स्वीकारने का खुलापन सम्पादकीय नीति में दिखायी देता है। *भूमिपुत्र* के अलावा *निरीक्षक* और *नयामार्ग* भी प्रवर्तमान गुजरात में संकीर्णतावादी विचार, प्रवृत्ति और संगठन के ख़िलाफ़ विचार और स्वर को मुक्त अवकाश देने की अहम भूमिका निभा रहे हैं। 2002 के हिंसा–कांड के पश्चात इन्हीं तीन विचार–पत्रों ने संकीर्ण हिंदुत्ववादी संगठनों और राज्य की खुले रूप से आलोचना करने वाले लेखों को स्थान देकर एक वैकल्पिक विमर्श को स्वरूप दिया। उसके अलावा भी सरकार की विभिन्न नीति और कार्यक्रम, ख़ासकर विकासलक्षी कार्यक्रम के विरुद्ध भी लेखों की शृंखला इन सामयिकों में लगातार प्रकट होती रही है। यह कार्यक्रम नवउदारवादी नीति के अंतर्गत बड़े औद्योगिक गृहों के पक्ष में है। ये बहुमत के हितों के ख़िलाफ़ हैं और पर्यावरण को हानि पहुँचा रहे हैं। ये तीनों विचार–पत्र गुजरात के नागरिक समाज के एक विशिष्ट घटक बन कर उभरे हैं।

वैसे इस लेख का विषय समाज–विज्ञान की लेखनी है। मैंने इसे थोड़ा विस्तृत करना लाज़मी समझा है। मैंने इसमें गुजराती में सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनीतिक और सार्वजनिक मामलों के साथ–साथ कई दिलचस्प और अहम दार्शनिक एवं वैचारिक विषयों के लेखन को शामिल करना भी उचित समझा है। यहाँ गुजराती में प्रकट हो रहे कई साहित्यिक जर्नलों का उल्लेख भी अत्यावश्यक है। अन्य भाषाओं की ही तरह गुजराती में भी बड़ी संख्या में साहित्यिक जर्नल प्रकाशित होते हैं। इनमें से कुछ सामाजिक संदर्भ रखने वाले अभ्यासपूर्ण लेख प्रकाशित करते हैं। *संधि, समीपे, फाबर्स, प्रत्यक्ष, परब, शब्दसृष्टि, कुमार, बुद्धिप्रकाश, उद्देश्य* इत्यादि जर्नल शुद्ध रूप से साहित्यिक विषयक लेखों के साथ–साथ साहित्य एवं कला के अन्य स्वरूप और समाज के अंत:संबंध को सम्बोधित करते हुए विद्याकीय सजगता के तौर पर काफ़ी सशक्त लेख भी सम्मिलित करते हैं। कई गुजराती साहित्यकार साहित्यिक कृति और समाज के अनुबंध को लेकर विद्याकीय तत्त्वयुक्त लेखन करते हैं।[1] कहने का अर्थ यह है कि अगर सर्वसमावेशी दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए तो गुजराती लेखन की स्थिति इतनी ख़राब नहीं है।

अलबत्ता यही बात सिर्फ़ और सिर्फ़ समाज–विज्ञान के संदर्भ में कहने में बड़ी झिझक होती है। समाज–विज्ञान के गुजराती जनरल से संबंधित मौजूदा परिदृश्य के बारे में आगे ज़िक्र हुआ है (यहाँ गुजरात से प्रकाशित होने वाले अंग्रेज़ी जर्नलों को विमर्श की परिधि से बाहर रखते हैं)। 'अर्थात्', 'विद्यापीठ' और 'आदिवासी गुजरात'— समाज–विज्ञान में ये तीन ही शुद्ध रूप से विद्याकीय जर्नल हैं। इन जर्नलों में प्रकट होने वाले मूलत: गुजराती लेखों में से बहुत ही कम लेख एक पूर्व–समीक्षित जर्नल में प्रकाशन के क़ाबिल होते हैं। ज़्यादातर लेख कॉलेज या युनिवर्सिटी में पदोन्नति पाने के

---

[1] *प्रत्यक्ष* के अप्रैल–जून, 2012 में सुविख्यात फ़िल्म–विवेचक अमृत गंगर ने *मिर्च मसाला* (निर्देशक : केतन मेहता) फ़िल्म की काफ़ी रोचक समीक्षा की है।

ऐसे कई लेखक हैं जिनकी पार्श्वभूमिका (या पृष्ठभूमि) गुजराती है। लेकिन वे ज़्यादातर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विद्याकीय समुदाय के लिए अंग्रेज़ी में लिखना पसंद करते हैं। वैसे इनमें से बहुत कम गुजराती में लिखने की सामर्थ्य रखते हैं। उन्होंने गुजरात समाज के ऊपर बहुमूल्य विद्याकीय संशोधन कर्म किया है, लेकिन इनका लेखन ख्याति प्राप्त राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अंग्रेज़ी जर्नलों और प्रकाशन गृहों की पुस्तकों के रूप में ही उपलब्ध है।

मक़सद से लिखे और भेजे जाते हैं। इन लेखों की विद्याकीय सशक्तता तो कम होती ही है, इनकी भाषा भी बहुत ही कमज़ोर होती है और काफ़ी मशक़्क़त के बाद ही प्रकाशन लायक बन पाती है।

इस कमी को पूरा करने के लिए *अर्थात्* अंग्रेज़ी या हिंदी के लेखों को अनूदित करके प्रकाशित करती है, जबकि *विद्यापीठ* अंग्रेज़ी या हिंदी के लेखों को भी स्थान देती है। *अर्थात्* ने शुरुआत से ही समाज-विज्ञान संबंधी विद्याकीय गुणवत्ता के साथ-साथ गुजराती भाषा के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने की कोशिश की है। इसमें समाज-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अंग्रेज़ी शब्दों और पदावली का गुजराती समानार्थी तलाशने की कोशिश की जाती है। इन कोशिशों में कभी-कभार संस्कृत का प्रभाव भी स्वाभाविक तौर पर उभरता हुआ नज़र आता है। इसी तरह, *निरीक्षक* और *नया मार्ग* के सम्पादकों ने भी बहुधा प्रचलित अंग्रेज़ी शब्दों के स्थान पर समानार्थी गुजराती शब्द प्रचलित किये हैं। यह उनका बड़ा ही अमूल्य योगदान है। इसका महत्त्व इसलिए भी बहुत बढ़ जाता है कि वर्तमान गुजरात में भाषा के प्रति सर्वमान्य उदासीनता पायी जाती है।

समाज-विज्ञान में भी गुजराती पुस्तकें बहुत ही कम संख्या में हैं। राज्य सरकार द्वारा स्थापित युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड ज़्यादातर समाज-विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित करता है। कुछ उपयोगी विषयों पर प्रकाशन करने के बावजूद विद्याकीय दृष्टि से उनका प्रदान विशेष नहीं माना जाता। अन्य गुजराती प्रकाशन गृहों की संख्या भी कम नहीं है। लेकिन ये समाज-विज्ञान में कम दिलचस्पी रखते हैं। दर्शक इतिहास निधि ने— जो कि सुविख्यात गुजराती सर्जक दर्शक की स्मृति में स्थापित की गयी संस्था है— इतिहास विषयक कुछ अच्छी किताबें प्रकाशित की हैं।[2] सेंटर फॉर सोशल स्टडीज़, सूरत ने अपने संशोधन काम पर आधारित और अन्य गुजरात संबंधित विषयों पर गुजराती में बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। यह संस्था सामयिक विषय पर सरल गुजराती में पठन सामग्री देने हेतु समाज-दर्शन श्रेणी के अंतर्गत पुस्तकों को प्रकाशित करती रही है। इस श्रेणी के अंतर्गत कोमवाद, पानी, दलित पहचान, नयी आर्थिक नीति जैसे विषयों पर प्रकाशन किया गया है। मुख्य प्रवाह के एक दो प्रकाशन गृहों ने हाल में गुजराती डायस्पोरा से संबंधित विषय पर पुस्तकें ज़रूर प्रकाशित की हैं पर उसका पाठक वर्ग बहुत ही सीमित है। उसी तरह, पोप्युलर प्रकाशन गृह समाजशास्त्र शाखा में स्नातक और अनुस्नातक पाठ्यक्रम से संबंधित पुस्तकें प्रकाशित करता है।

प्रमुख मसला गुजराती में लेखन का है। विडम्बना यह है कि ऐसे कई लेखक हैं जिनकी पार्श्वभूमिका (या पृष्ठभूमि) गुजराती है। लेकिन वे ज़्यादातर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विद्याकीय समुदाय के लिए अंग्रेज़ी में लिखना पसंद करते हैं। वैसे इनमें से बहुत कम गुजराती में लिखने की

[2] मिसाल के तौर पर ई.एच. कार की 'इतिहासनो मर्म' और डेविड हार्डीमन की गुजरात से संबंधित किताब.

सामर्थ्य रखते हैं। उन्होंने गुजरात समाज के ऊपर बहुमूल्य विद्याकीय संशोधन कर्म किया है, लेकिन इनका लेखन ख्याति प्राप्त राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अंग्रेज़ी जर्नलों और प्रकाशन गृहों की पुस्तकों के रूप में ही उपलब्ध है। इसी तरह, गुजरात से संबंधित कुछ बड़े ही अहम संशोधन गुजरात के बाहर के देश-विदेश की युनिवर्सिटी और संशोधन संस्था के संशोधकों द्वारा किये गये हैं। लेकिन ये सभी अंग्रेज़ी में ही प्रकट हुए हैं। यानी गुजरात समाज के बारे में बड़ी ही उपयुक्त विद्याकीय सामग्री उपलब्ध तो है, पर वह अंग्रेज़ी में है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन्हें गुजराती में तर्जुमा करने वाले सक्षम लोगों की कमी है, और प्रकाशक भी इन्हें गुजराती में छपवाने के लिए आतुर नहीं हैं। वैसे यहाँ यह बताना आवश्यक है कि कुछ समाज-विज्ञानी मुख्य-प्रवाह के गुजराती अख़बारों के लिए नियमित तरीक़े से साप्ताहिक कॉलम लिखते हैं। एक तरीक़े से इसके ज़रिये सामाजिक विश्लेषण युक्त लेखन लोकप्रिय माध्यम से गुजरात के पाठकों को उपलब्ध होता है।

अंत में, समाज-विज्ञान से संबंधित गुजराती भाषीय लेखन की स्थिति या दशा का संक्षिप्त बयान करें, तो कहना पड़ेगा कि वस्तुतः गुजरात समाज का शिक्षित समूह गुजराती भाषा की तरफ़ से उदासीन हो रहा है। मातृभाषा की उपेक्षा करने से भाषा का आदर भंग तो हो ही रहा है, पर साथ में भाषा का प्रचलन, व्याप्ति और विकास भी कुंठित हो रहा है। दूसरी ओर, गुजरात की युनिवर्सिटियों में समाज-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में संशोधनलक्षी और विद्याकीय काम की ओर मशक़्क़त की चाह और क्षमता भी कम दिखायी देती है। इन दोनों का सीधा असर समाज-विज्ञान के गुजराती लेखन में प्रतिबिम्बित होता है। गुजराती में प्रकाशित होने वाले जर्नल और पुस्तकें कम नहीं हैं, परंतु समाज-विज्ञान में पूर्णतः विद्याकीय स्वरूप के गुजराती जर्नल गिने-चुने ही हैं और इस तरह की पुस्तकें भी कम हैं। वैसे साहित्यिक जर्नलों और पुस्तकों के संदर्भ में स्थिति बहुत ही भिन्न और काफ़ी बेहतर है।